P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 Vol-I* Issue- VII* October - 2016
E: ISSN NO.: 2455-0817

Remarking An Analisation

उत्तराखण्ड में कम्पनियों द्वारा कर नियोजन का समस्यात्मक अध्ययन

भगवती देवी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
वाणिज्य विभाग,
लाल बहादुर शास्त्री राजकीय महाविद्यालय,
हल्दूचौड

सारांश

उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में मूलभूत सुविधाओं का अभाव है। यहां सड़के बहुत कम चौड़ी एवं कमजोर है। वर्षा ऋतु में यह अधिकतर टूटती रहती है। उद्यम स्थापित करने के समतल भूमि की आवश्यकता होती है जबकि उत्तराखण्ड में भूमि उबड़–खाबड़ है जिसे समतल करने में उद्यमी को काफी लागत लगानी पड़ती है। इन क्षेत्रों में पूर्णरूप से विद्युतीकरण नहीं हो पाया है जिसके कारण उद्यम स्थापित करना सम्भव नहीं है। जिला उद्योग केन्द्रों के अभिलेखों का अध्ययन करने से यह ज्ञात हुआ कि इन क्षेत्रों में उद्यम स्थापित करने के प्रस्ताव तो बहुत से आ रहे हैं किन्तु कार्य रूप में स्थापित उद्यम एक चौथाई से भी कम है। इसका मुख्य कारण पर्वतीय क्षेत्रों में मूलभूत सुविधाओं का अभाव है। इस शोध अध्ययन का मुख्य उददेश्य यह है कि इस राज्य में उद्योगो के समक्ष आने वाली समस्याओं को दर्शित करके सुझाव देने का प्रयास किया गया है ताकि इस क्षेत्र से युवाओं के पलायन को रोका जा सके और राज्य का अधिकाधिक आर्थिक विकास हो सके।

मुख्य शब्द : अर्थव्यवस्था, पूँजीसंरचना, करनियोजन, विपणन, अन्वेशण, अधिनियम

प्रस्तावना

किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व उसकी नीति तथा कार्य प्रणाली का नियोजन करना आवश्यक होता है। नियोजन से किये गये कार्यों की सफलता की अधिक सम्भावना होती है। नियोजन कोई नया शब्द नहीं है। नियोजन अतीत काल से होता आया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भारत के नीति निर्धारकों ने देश के सर्वांगीण विकास हेतु अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में नियोजन को अपनाया। औद्योगिक, आर्थिक, सामाजिक, कृषि आदि में योजनाबद्ध विकास के लिए पंचवर्शीय योजनाएं बनाई गयी हैं। यह नियोजन का युग है। कर नियोजन की आवश्यकता हमारे देश में इस कारण से और अधिक हो गई है क्योंकि हमारे देष में कर की दरें अन्य देशों की अपेक्षा ऊँची हैं तथा करारोपण के विधान अति जटिल हैं। अतः कर दाता को अपनी आय–व्यय का विवरण इस प्रकार नियोजित करना चाहिए कि वह किसी जटिल समस्या में न फंस जाए। कर नियोजन में करारोपण के विधान का पूर्ण तथा गहन अध्ययन करके उसके द्वारा दी गयी छूटों, कटौतियों, रियायतों आदि का पूर्ण लाभ उठाकर कर भार न्यूनतम करना है। कर नियोजन एक सकारात्मक विधि है जिसमें विधान के आयोजनों का उल्लंघन किये बिना तथा विधान की भावनाओं तथा उद्देश्यों के अनुरूप छूटों, कटौतियों एवं रियायतों का पूर्ण लाभ उठाकर कर भार न्यूनतम किया जाता है। कर भार को न्यूनतम करने का प्रत्येक करदाता को पूर्ण अधिकार है तथा इसे सरकार, समाज एवं न्यायालय बुरी दृष्टि से नहीं देखता है। एक कम्पनी भी अपना कर–दायित्व विधान के अनुरूप कम कर सकती है। कम्पनी के सन्दर्भ में कर नियोजन के प्रमुख क्षेत्रों या आधारों का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है

1. व्यवसाय की स्थापना का स्थान एवं प्रकृति,
2. व्यवसायिक संगठन के प्रारूप,
3. पूँजी संरचना निर्णयन से सम्बन्धित कर नियोजन,
4. लाभांश नीति,
5. स्वयं की सम्पत्ति या पट्टे पर सम्पत्ति के सम्बन्ध में कर नियोजन,
6. बनाना या खरीदना निर्णय,
7. सम्पत्ति की मरम्मत, नवीकरण या नूतन अवस्था,
8. व्यवसाय बन्द करना या चालू रखना निर्णय,

9. वैज्ञानिक शोध के लिए उपयोग में आने वाली पूँजी सम्पत्ति का विक्रय,एकीकरण,
10. कर प्रबन्धन

कर नियोजन से सम्बन्धित समस्यायें

कर–नियोजन से वास्तव में कर–भार कम किया जा सकता है किन्तु इसमें अनेक समस्यायें भी उत्पन्न होती है। इन समस्याओं के कारण कम्पनियों को कर–नियोजन करने में असुविधा होती है। कर–नियोजन में उत्पन्न होने वाली सामान्य समस्याओं का विस्तार पूर्वक वर्णन निम्न प्रकार से है –

औद्योगिक पार्कों, स्वतन्त्र व्यापार क्षेत्र आदि में नये औद्योगिक उपक्रम स्थापित करने में आने वाली व्यावहारिक एवं अवसंरचनात्मक समस्यायें

कर छूटों, रियायतों, कटौतियों आदि का लाभ प्राप्त करने के लिए उत्तराखण्ड में उपरोक्त क्षेत्रों में नये औद्योगिक उपक्रम स्थापित किये गये हैं। इन क्षेत्रों में उपक्रम की स्थापना में अनेक व्यावहारिक एवं अवसंरचनात्मक कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा है। इन क्षेत्रों में मूलभूत सुविधाओं एवं औद्योगिक विकास के लिए अन्य साधनों का अभाव है। इन क्षेत्रों की प्रमुख समस्याओं का वर्णन निम्नलिखित बिन्दुओं में स्पष्ट किया गया है

सड़क

इन क्षेत्रों में सड़कों की स्थिति बहुत खराब है। सड़कें बहुत कम चौड़ी एवं कमजोर हैं। भारी वाहनों के आवागमन से ये बहुत जल्दी खराब हो जाती हैं। जिससे उपक्रम में विनिर्माण सामग्री आदि लाने ले जाने में असुविधा होती है।

बिजली

उपक्रम स्थापना के समय से ही बिजली की अत्यन्त आवश्यकता होती है। बिजली विभाग द्वारा समय पर बिजली वितरण कार्य नहीं किया जाता है। जिससे उपक्रम के निर्माण कार्य में अनावश्यक विलम्ब/व्यवधान उत्पन्न होता है परिणमतः निर्मित माल की पूर्ति करने में विलम्ब होना स्वाभाविक है।

रेलमार्ग सुविधा का अभाव

उत्तराखण्ड राज्य में रेलमार्ग का समुचित विकास नहीं हो पाया है। रेलमार्ग की सुविधा न होने से सामग्री के किराये भाड़े की लागत अधिक आती है।

विपणन केन्द्रों का अभाव

यदि इन क्षेत्रों में माल उत्पादित हो भी जाता है तो उत्तराखण्ड राज्य में विपणन केन्द्रों का अभाव है। यहाँ पर विपणन केन्द्र न होने के कारण निर्मित माल को बाहर अन्य राज्यों में भेजना पड़ता है जिसके कारण माल की लागत में वृद्धि हो जाती है।

प्रशिक्षित मानव संसाधन का अभाव

उत्तराखण्ड राज्य में प्रशिक्षित मानव संसाधन का अभाव है। कम्पनी प्रबन्धकों को अन्य राज्यों से अधिक वेतनमान पर कर्मचारी नियुक्त करने पड़ते हैं। इससे क्षेत्रीय बेरोजगारों एवं उपक्रम के प्रबन्धकों के मध्य सदैव विवाद होता रहता है जिससे तालाबन्दी, हड़ताल आदि से क्षेत्र में अशान्ति का माहौल उत्पन्न हो जाता है।

पूँजी संरचना निर्णयन में होने वाली समस्यायें

नवीन परियोजनाओं की पूर्ति के लिए अंशपूँजी अपर्याप्त होती है और इसके लिए अधिक मात्रा में अन्य स्रोतों से ऋण प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है। अतः प्रवर्तकों द्वारा जुटाई गई जोखिम–पूँजी उसके लिए अपर्याप्त रहती है और परियोजना लागत के शेष भाग की पूर्ति सरकारी, अर्ध–सरकारी, देशी एवं विदेशी संस्थाओं से दीर्घकालीन ऋण लेकर की जाती है। इस प्रकार इन समस्त कारणों की सम्मिलित प्रतिक्रिया के फलस्वरूप भारत में नवीन कम्पनियों की कुल पूँजी में अंश–पूँजी की अपेक्षा ऋण–पूँजी का अनुपात अधिक हो जाता है और अनेक नवीन कम्पनियों में ऋण–पूँजी की मात्रा अंश–पूँजी की तुलना में दुगनी अथवा तिगुनी हो गयी है। यह मान्यता है कि निम्न ऋण–पूँजी अनुपात सुदृढ़ता का प्रतीक है उच्च ऋण–पूँजी अनुपात निर्बलता का परिचायक है – आधुनिक परिस्थतियों में सही नहीं है। किसी कम्पनी में अधिक ऋणों की मात्रा आवश्यक रूप से स्वयं में कोई आर्थिक निर्बलता अथवा वित्तीय संकट की सूचक नहीं मानी जा सकती। इसके विपरीत, यदि कोई कम्पनी ऋणों का उत्तम उपयोग रखने की योग्यता रखती है और उनके आधार पर इतना लाभ अर्जित कर सकती है जो उन पर देय ब्याज से अधिक है तो यह उस कम्पनी की सुदृढ़ वित्तीय स्थिति का प्रतीक माना जायेगा। कम्पनी के लिए यह सन्तोष का विषय होगा कि अन्य लोगों से उधार ली गयी पूँजी पर कम्पनी उस पूँजी पर देय ब्याज से अधिक लाभ कमाकर सदस्यों को वितरित किये जाने वाले लाभांश की दर में वृद्धि करने में सफल हो सकेगी। किन्तु सभी कम्पनियों में उच्च ऋण–पूँजी अनुपात रखना सम्भव नहीं होता है। व्यापारिक कम्पनियों में स्थिर सम्पत्तियों की प्रकृति को देखते हुए उनमें उच्च ऋण–पूँजी अनुपात नहीं रखा जा सकता जबकि वित्तीय प्रकृति की कम्पनियां ऋण पर ही जीवित रहती है और इनमें ऋण–पूँजी अनुपात इतना अधिक होता है कि संकट के समय इनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय रहती है। उत्पादक अथवा निर्माणक कम्पनियां ऐसा खतरा मोल नहीं ले सकती हैं और न ही वे व्यापारिक कम्पनियों की भाँति अत्यन्त निम्न ऋण–पूँजी अनुपात से अपना काम चला सकती हैं। अतः इनमें उचित ऋण–पूँजी अनुपात रखा जाना चाहिए। ऐसी कम्पनियों में 100 से 200 प्रतिशत तक ऋण–पूँजी अनुपात उचित माना जाता है। यद्यपि ऋण लेने से निगम कर–दायित्व में काफी कमी आती है किन्तु ऋण–पूँजी की कुछ सीमायें भी हैं जिन्हें निम्न प्रकार से स्पष्ट किया गया है –

जोखिम पूर्ण

एक सीमा से अधिक ऋण–पूँजी का उपयोग व्यवसाय के लिए जोखिम पूर्ण होता है। उच्च ऋण–पूँजी अनुपात ऐसी कम्पनियों में जोखिम की मात्रा में वृद्धि करता है जिनकी आय में उतार चढ़ाव होते रहते हैं। प्रत्येक अनुवर्ती ऋण के साथ कम्पनी की स्थिर ब्याज देयता की मात्रा में वृद्धि होती जाती है जो कम्पनी की भावी आय पर प्रभार डालती हैं और व्यवसाय में रोकड़–निर्गमों की सीमा को बढ़ा देती है। यह स्थिति

कम्पनी की तरलता को तो प्रभावित करती ही है, साथ ही कालान्तर में कम्पनी की शोध क्षमता पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है। ब्याज के रूप में नियमित भुगतान एवं समय–समय पर मूल धनराशि के पुनर्भुगतान की बढ़ती हुई बाध्यता कम्पनी की शोध क्षमता के लिए कम आय वाले वर्षों में खतरा या जोखिम उत्पन्न कर सकती है।

व्यवसाय की प्रकृति

व्यवसाय की प्रकृति ऋण–पूँजी को प्रभावित करती है। कुछ व्यवसाय ऐसे होते हैं जिनमें उत्पादन एवं विक्रय निरन्तर वर्ष पर्यन्त होता रहता है। इसके विपरित कतिपय अन्य व्यवसाय मौसमी प्रकृति के होते हैं जैसे– चीनी उद्योग, ऊनी वस्त्र उद्योग, बर्फ तथ शीतल पेय उद्योग आदि। मौसमी प्रकृति के उद्योगों में व्यस्त मौसम में अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है तथा शिथिल मौसम में इसकी कम आवश्यकता होती है। इस मौसम में इन पर ब्याज भार स्वरूप होगा।

अन्य

भारत में कम्पनियों के ऋण–पूँजी अनुपात के अन्वेषण एवं नियन्त्रण के लिए कोई समुचित व्यवस्था नहीं है। इसके अतिरिक्त पूंजी की लागत, परिसम्पत्तियों का ढाँचा, पूँजी बाजार की दशायें, विनियोजकों का मनोविज्ञान तथा प्रचलित नियम एवं सन्नियम कम्पनी के पूँजी ढाँचे को प्रभावित करते हैं।

लाभांश नीति में कर नियोजन के समय होने वाली समस्यायें

लाभांश का कितना भाग नकद लाभांश के रूप में वितरित किया जाय और कितने भाग का व्यवसाय में प्रतिधारण किया जाय? यह एक जटिल समस्या है जो प्रबन्धकों के समक्ष प्रत्येक वर्ष के अन्त में पैदा होती है। अधिकांश अंशधारी चाहते हैं कि अधिक नकद आय प्राप्त हो और कम्पनी प्रबन्धक (जो अंशधारी भी हैं) चाहते हैं कि कम्पनी के भावी विकास के लिए आवश्यक कोशों की आन्तरिक साधनों से अंशतः पूर्ति की जा सके एवं लाभांश पर कर दायित्व भी कम हो। लाभांश कई प्रकार के होते हैं जैसे नकद लाभांश, बोनस अंश, बोनस ऋण–पत्र के रूप में लाभांष, सम्पत्ति लाभांश, संयुक्त लाभांश, वैकल्पिक लाभांष, अन्तरिम लाभांश एवं अतिरिक्त लाभांश आदि। यदि कम्पनी के पास पर्याप्त रोकड़ नहीं है जिससे कि वह सुविधापूर्वक लाभांश का भुगतान नकद में कर सके, तो ऐसी स्थिति में बोनस अंशों के रूप में लाभांष दिया जा सकता है। कम्पनी को बोनस अंश के रूप में दिये गये लाभांष पर कर नही ं देना पड़ेगा। भारत में बोनस अंषों का निर्गमन सेबी को अनुमति लेकर ही किया जा सकता है। ऐसी अनुमति लेना "प्राइवेट लिमिटेड" तथा "पब्लिक लिमिटेड" दोनों प्रकार की कम्पनियों के लिए अनिवार्य है। वित्त मंत्रालय द्वारा बोनस अंशों के सम्बन्ध में कुछ दिशा–निर्देश दिये हैं जो इन्हें सीमाबद्ध करते हैं। बोनस अंशों के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख सीमायें इस प्रकार से हैं

1. बोनस अंश किसी कम्पनी के द्वारा इसी दशा में निर्गमित किये जा सकते हैं जबकि उस कम्पनी के अन्तर्नियमों में ऐसा करने का प्रावधान है।
2. बोनस अंशों का निर्गमन प्राधिकृत पूँजी की सीमाओं के अन्दर ही होना चाहिए।
3. बोनस अंशों के निर्गमन की अनुमति वास्तविक लाभों के आधार पर निर्मित मुक्त संचित कोषों अथवा अंशों पर प्राप्त किये गये प्रीमियम में से ही दी जा सकती हैं। स्थिर सम्पत्तियों के पुनर्मूल्यांकन के आधार पर निर्मित कोषों के पूंजीकरण की अनुमति नहीं दी जायेगी।
4. कम्पनी के पिछले तीन वर्ष के औसत कर सहित लाभों का 30 प्रतिशत भाग प्रस्तावित बोनस अंशों का निर्गमन के बाद बढ़ी हुई पूँजी पर 10 प्रतिशत लाभांश चुकाने के लिए पर्याप्त राशि बचनी चाहिए।
5. जब तक अंशतः चुकता अंशों को पूर्णतः चुकता अंशों में परिवर्तित न कर लिया हो, बोनस अंशों की अनुमति नहीं दी जायेगी।
6. यदि यह प्रतीत होने के समुचित कारण हों कि कम्पनी कर्मचारियों की वैधानिक बकाया राशि जैसे भविष्य निधि, ग्रेच्युइटी, बोनस आदि के भुगतान नहीं किये जाने की दोषी है, जो उसे बोनस अंशों के निर्गमन की स्वीकृति नहीं दी जायेगी।
7. बोनस अंशों के निर्गमन के लिए मुक्त कोषों का वह भाग जिसके पूंजीकरण की अनुमति दी गयी है कम्पनी की सकल चुकता पूँजी से अधिक नहीं होना चाहिए। अर्थात बोनस अंशों का निर्गमन अधिकतम 1:1 के अनुपात में ही किया जा सकता है। भारतीय कम्पनियों में केवल नगद लाभांश एवं बोनस लाभांश ही प्रचलित है। नगद के अतिरिक्त सम्पत्ति या बन्ध–पत्रों के रूप भारतीय कम्पनियाँ लाभांश नहीं दे सकती। भारतीय कम्पनी अधिनियम की धारा 205 (3) के अनुसार नगद के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से लाभांश का भुगतान नहीं किया जा सकता लाभों का पूंजीकरण करके बोनस अंशों के रूप में लाभांश देना इस नियम का अपवाद अवश्य है। भारतीय कम्पनियाँ अन्तरिम लाभांश एवं अतिरिक्त लाभांश दे सकती हैं।

मरम्मत एवं नवीकरण के सम्बन्ध में कर नियोजन करते समय उत्पन्न होने वाली समस्यायें

सम्पत्ति की मरम्मत और नवीकरण आदि के सम्बन्ध में कोई राशि व्यय की जाति है तो आयकर अधिकारी के सम्मुख पूंजीगत व्यय एवं आगम व्यय में अन्तर स्पष्ट करना कठिन होता है। आगम व्यय की राशि पर पूर्ण रूप से कटौती मिलती है जबकि पूँजीगत व्यय की राशि को सम्पत्ति में जोड़ लिया जाता है और इस पर प्रतिवर्ष ह्रास के रूप में कटौती मिलती है।

बनाना या खरीदना के सम्बन्ध में कर नियोजन करते समय उत्पन्न होने वाली समस्यायें

यदि उत्पादन के लिए नया यूनिट लगाया जाता है तो नये यूनिट की स्थापना में लागत बढ़ने से वस्तु के मूल्य में वृद्धि हो जाती है।

स्वयं की सम्पत्ति या पट्टे की सम्पत्ति के सम्बन्ध में कर नियोजन करते समय उत्पन्न होने वाली समस्यायें

यदि व्यवसाय के लिए सम्पत्ति खरादी जाती है तो इसके अप्रचलित होने की सम्भावना अधिक होती है।

आज के तकनीकी युग में बाजार में नयी–नयी मशीनों का आविश्कार होता रहता है और विद्यमान सम्पत्ति (मशीन) से उत्पादन करना लागत में वृद्धि करना है। इसके अतिरिक्त भूमि के सम्बन्ध में यदि भूमि खरीदी जाती है तो भूमि अधिनियम के अन्तर्गत सरकार से अनुमति लेनी होती है तथा जिस प्रयोजन के हेतु भूमि ली गयी है उसे दो वर्ष के अन्दर ही उसी प्रयोजन के लिए प्रयुक्त करना अनिवार्य होता है। अनुमति लेने एवं प्लाण्ट स्थापित करने के लिए यह अवधि काफी कम है।

एकीकरण के सम्बन्ध में कर नियोजन करते समय उत्पन्न होने वाली समस्यायें

एकीकरण में सभी एकीकृत कम्पनियों का एक प्रबन्धन होना आवश्यक है जो सभी एकीकृत होने वाली कम्पनियों के प्रति जवाबदेह हो। लेकिन यही इसका आधारभूत दोष है कि सभी एकीकृत कम्पनियां एक सर्वमान्य प्रबन्धन के प्रति जवाब देह नहीं हो पाती है। इसके अतिरिक्त इसमें प्रबन्धकीय व वित्तीय दोष, एकीकृत कम्पनियों में अन्य व्यवहारिक रिष्ते, संचालन के लिए पूँजी ढाँचा, कर लाभों से सम्बन्धित समस्यायें तथा एकीकृत कम्पनी में अन्य इकाइयों का पूँजी अंशों से सम्बन्धित समस्यायें आती हैं।

कर प्रबन्धन के समय उत्पन्न होने वाली समस्यायें

बिना उचित कर प्रबन्धन के कर नियोजन व्यवहारिक रूप से अपूर्ण है। कर प्रबन्धन एवं कर नियोजन एक दूसरे के पूरक है। कर प्रबन्धन कर नियोजन का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। कर प्रबन्धन कम्पनी को किसी भी प्रकार के गलत निर्णय लेने से बचाता है। कर प्रबन्धन में कम्पनी प्रबन्धकों के सम्मुख कुछ कठिनाईयाँ आती हैं जिनका वर्णन निम्नलिखित बिन्दुओं में किया गया है

1. **कर प्रबन्धन में अनेक छोटी**

छोटी पुस्तकों में कार्य करना पड़ता है और इन पुस्तकों में कार्य करने में अनेक जटिलतायें होती है।

2. **कम्पनी को प्रत्येक मद के लिए अनेक पृथक**

पृथक लेखे रखने पड़ते हैं। यदि दुर्भाग्यवश भविष्य में कभी कोई मुकदमें के समय उचित साक्ष्य का अभाव हो जाये तो हानि उठानी पड़ सक़ती है।

3. **मुकदमों, नियमों एवं आयोजनों तथा सरकारी सूचनाओं हेतु कम्पनी को बहुत से छोटे**

छोटे आंकड़े क्रमबद्ध रूप से रखने पड़ते है। ये आकड़े इतने अधिक होते हैं कि जिन्हें संगठित करके रखना अत्यन्त कठिन होता है।

4. **कर कानूनों में जटिलता एवं जल्दी**

जल्दी संसोधन होना भारत के आयकर कानूनों में अत्यधिक जटिलतायें हैं। कर छूटों, कटौतियों एवं प्रावधानों का लाभ प्राप्त करनें के लिए अनेक प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है। कभी – कभी यह प्रक्रिया इतना अधिक समय ले लेती है कर छूट प्राप्त करने की अवधि ही समाप्त हो जाती है। वित्त अधिनियम द्वारा प्रत्यक्ष करों में जल्दी – जल्दी संसोधन किये जातें हैं। करदाता को यह विश्वास नहीं रहता है कि वर्तमान जो कर छूट प्रदान की गयी है वह भविष्य में भी चालू रहेगी। अतः वह लम्बी अवधि की योजना बनाने से डरता है और इसके परिणाम स्वरूप आर्थिक उन्नति की गति तेजी से नहीं बढ़ पाती है।

कर नियोजन पर अन्य अधिनियमों एवं आर्थिक कारको का प्रभाव

कर नियोजन स्वयं में पूर्ण नहीं है। इसे अन्य तत्व जैसे प्रत्यक्ष कर अधिनियम, कम्पनी अधिनियम तथा आर्थिक तत्व जैसे सरकार की मौद्रिक नीति, मुद्रा प्रसार, मुद्रा संकुचन आदि कारक भी प्रभावित करते हैं जो कर नियोजन के क्षेत्र को सीमित करते हैं।

आयकर विभाग के अधिकारियों का उद्योगपतियों के साथ उपेक्षापूर्ण व्यवहार

जब कम्पनी द्वारा अपनी आय का विवरण आयकर अधिकारी के सम्मुख रखा जाता है इसे संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। कम्पनी के फाइलें कई बार जाँच हेतु मंगाये जाती हैं तथा उनसे जवाब–तलब किया जाता है क्योंकि आयकर अधिकारी अधिक से अधिक कर लेना चाहता है और करदाता के कर नियोजन को कर अपवंचन की दृष्टि से देखा जाता है। अधिकारियों का यह उपेक्षापूर्ण व्यवहार कर नियोजन को प्रभावित करता है।

निष्कर्ष

आयकर अधिनियम में जो यह कर छूटें प्रदान की गयी हैं उनसे राज्य के औद्योगिक विकास के साथ – साथ आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक विकास भी होता है। राज्य सरकार को इन उपक्रमों के विकास के लिए समुचित व्यवस्था करनी चाहिए। इसके लिए सड़कों का विकास एवं विस्तार करना चाहिए जिससे वाहनों के आवागमन में सुविधा हो। समय पर बिजली वितरण कार्य करना चाहिए ताकि उपक्रम के विनिर्माण का कार्य निश्चित समय पर हो सके। किराये भाड़े की लागत कम करने तथा समय पर कच्चा माल उपलब्ध कराने के लिए रेलमार्ग का विकास किया जाना चाहिए। विपणन केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए जिससे उपक्रमों को निर्मित माल के विपणन में सुविधा हो सके। प्रशिक्षित मानव संसाधन के लिए विशेष प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित करने चाहिए ताकि राज्य में बेरोजगारी दूर हो सके और क्षेत्र में शान्ति एवं समन्वय का माहौल स्थापित हो सके। इसके अतिरिक्त उत्तराखण्ड राज्य में विभिन्न औद्योगिक आस्थानों में जो उपक्रम स्थापित किये गये हैं उनकी कर छूट की अवधि को बढ़ाया जाना चाहिए। इन उपक्रमों को मूलभूत सुविधाओं के अभाव के कारण उत्पादन प्रारम्भ करने में अधिक समय लगा जिससे ये कर छूट की सम्पूर्ण अवधि का लाभ प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। अतः राज्य सरकार को यह अवधि बढ़ाने के लिए केन्द्र सरकार को प्रस्ताव भेजकर इस अवधि को पाँच वर्ष बढ़ाने की मांग की जानी चाहिए ताकि राज्य के आर्थिक विकास की प्रगति के साथ–साथ रोजगार के अवसर सृजित हो सकें और अन्ततोगत्वा पिछड़े राज्य में मानव संसाधन के पलायन को स्थायी तौर से रोका जा सके।

उत्तराखण्ड पर्वतीय क्षेत्रों हेतु घोषित औद्योगिक नीति को सफल बनाने हेतु सुझाव उत्तराखण्ड पर्वतीय क्षेत्रों हेतु घोषित औद्योगिक नीति को सफल बनाने के लिए प्रदेश सरकार को महत्वपूर्ण कदम उठाने होंगे।

इसके लिए यहां की सड़कों का विस्तार करके उन्हें मजबूत बनाया जाना चाहिए। साथ ही साथ इन क्षेत्रों में त्वरित गति से विद्युतिकरण करके समतल भूमि पर उद्यम स्थापित करने की अनुमति प्रदान की जानी चाहिए जिसके फलस्वरूप दूरस्थ एवं पर्वतीय क्षेत्रों में निवेश को प्रोत्साहित करके रोजगार के अधिकाधिक अवसर सृजित किये जा सकते हैं तथा इन क्षेत्रों में विशेष रूप से युवाओं के पलायन को भी रोका जा सकता है और इस नीति की सफलता राज्य के आर्थिक विकास की दिशा में मील का पत्थर साबित होगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डा. सोमेश कुमार शुक्ला भारत की प्राचीन एवं वर्तमान कर व्यवस्था, न्यु रायल बुक कम्पनी , लखनऊ।
2. डा. बी. के. अग्रवाल आयकर विधान एवं लेखे, नवयुग साहित्य सदन, आगरा।
3. एफ. ए. श्रीनिवास कारपोरेट प्लानिंग
4. आर.एल. नौलखा व्यापारिक एवं कम्पनी विधि, निगमिय सन्नियम एवं सचिवीय पद्धति, श्री महावीर पब्लिकेशन नई दिल्ली।
5. डॉ. आर.के. जैन आयकर विधान एवं लेखे, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
6. डॉ. एच.सी. मेहरोत्रा एवं डॉ. एस.पी. गोयल निगमीय कर नियोजन एवं प्रबन्ध, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
7. हरीश चन्द्र जोशी कुमाऊँ की अर्थव्यवस्था, अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा–1980।
8. मोहन, डॉ. सविता एवं यादव हरीश उत्तरांचल समग्र अध्ययन, विद्यावती प्रकाशन, मल्लीताल नैनीताल, प्रथम संस्करण–2007।